तृतीय सर्ग

दान

कल कल कर हो रही प्रवाहित जन्हुसुता[1] की धार।
और पवन के झोकों से तरु हिलते बारम्बार ॥1॥

विविध वर्ण के पक्षी उन पर करते बैठे गान।
कर देती बरबस मन प्रमुदित उनकी अनुपम तान ॥2॥

सदा शीर्ष पर धारण करते हैं जिसको ईशान[2]।
उस अपगा[3] का हो सकता है कैसे महिमा गान ॥3॥

ऋणी भानुकुल[4] का यह जग है देख रहा जो आज।
स्वयं मुक्ति को धरे धरा पर तरल तरंगित साज ॥4॥

रामभक्ति सम है अघनाशिनि[5] ब्रह्मार्णव की ओर।
करती है परिवहित नित्य नूतन हर एक हिलोर ॥5॥

तट प्रकीर्ण सिकता में होती यहाँ रजत की भ्रान्ति।
तप्त विरस तट मध्य प्रवाहित यह सरसा विश्रान्ति ॥6॥

मानव क्या अभिशप्त सुरों को भी देती यह मुक्ति।
क्षण में होती यहाँ मनुज की बहु भवताप वियुक्ति ॥7॥

क्षुधा तृषा से हो परिमोचन मिटे भुवन का दाह।
विधि की ही करुणा का लगता यह अनवरत प्रवाह ॥8॥

---

1. गंगा; 2. शिवजी; 3. नदी; 4. भगीरथ सूर्यवंशी थे; 5. पाप नष्ट करने वाली।

हर पल मुझसा ही गतिमय है यह सारा संसार।
मानो है दर्शाती अस्थिर हैं समग्र आकार ॥9॥

ध्यान मग्न सा बैठा देखे बस अवसर की राह।
इस बक को सन्तत है बस शफरी[1] आमिष[2] की चाह ॥10॥

शान्त भंगिमा और श्वेत इसका जो है आकार।
राजनीतिपटु राजपुरुष ही मानो है साकार ॥11॥

इसकी तृष्णा और झपट को मात्र जानती मीन।
हो क्षत-विक्षत इसके जठरानल में होती लीन ॥12॥

श्रद्धा निष्ठा और भावना उद्यम उन्नति मूल।
इनके बिना न मुक्ति रहें चाहे साधन अनुकूल ॥13॥

गंगाचारी भी न नक्र[3] तजते हैं निजव्यापार।
मनोमलीमस प्रक्षालन ही आत्मोन्नति आधार ॥14॥

कच्छप मानो कहता जल से उठकर बारम्बार।
प्राणायामी बनो सीखलो हमसे प्रत्याहार ॥15॥

पाते हैं दीर्घायु इसी से जब हम प्राणी क्षुद्र।
प्राप्त करो अमरत्व मानवो तुमको ज्ञान अमुद्र[4] ॥16॥

देखो घोंघे को कैसे वह काग रहा है फोड़।
चञ्चु प्रहारों से न टूटता नहीं रहा पर छोड़ ॥17॥

करके सृजित आवरण ऊपर जो होते गतिहीन।
होना पड़ता उन्हें एक दिन अरि के सम्मुख दीन ॥18॥

हास युक्त प्रतिप्रात झूमते ये जलजात अशंक।
छिपा रखा है वसु[5] ने इनसे सम्बन्धित बहु पंक ॥19॥

---

1. मछली; 2. माँस; 3. मगर; 4. अपरिमित; 5. जल, धन।

शतदलयुक्त सहसकर[1] विकसित ये मधुयुक्त महान।
करवाते हैं नित्य भ्रमर से अपना ही यशगान ।।20।।

जिस विराट पादप को मस्तक पर धरता है कूल।
जलधारा यह देखो उसके काट रही है मूल ।।21।।

जो जीवन[2] है नित्य द्रुमों के जीवन का आधार।
वही जड़ें कर रहा खोखली कैसा यह व्यवहार ।।22।।

क्या विकास के साथ जुड़ा जीवन में क्रमिक विनाश।
अविश्रान्त सर्जन का क्षय का चलता जीत प्रयास ।।23।।

तरल और चंचल धरते जो मन चाहा आकार।
मौन तटस्थों पर भी करते नित्य अहेतु प्रहार ।।24।।

ऊर्जस्वी[3] भास्वर[4] भवसुखकर[5] कुछ स्वर्णिम कुछ लाल।
खड़ा विहँसता ज्यों शशीशशिशु[6] बनकर तारक[7] काल ।।25।।

पूर्व दिशा में उदित हो रहे अरूणिम रवि को देख।
मन पर खिंच जाता पल में आह्लाद भरा आलेख ।।26।।

मानो सहस करों से देते जग को आशीर्वाद।
आते ही हर लेते जीवों का सारा अवसाद[8] ।।27।।

मानों जन जन को समझाते रह कर एक समान।
रहो अविचलित जीवन रण में उदय हो कि अवसान ।।28।।

आते हो दिनकर के हिमकर[9] होता आभा हीन।
ज्ञान प्रकाश फैलते ही ज्यों राग[10] भागता दीन ।।29।।

कुछ क्षण पहले तक जो नभ था तम से ही परिपूर्ण।
बरसाता सा लगता था जो अविरल काजल चूर्ण ।।30।।

---

1. सूर्य; 2.जल; 3. तेजस्वी; 4. चमकता हुआ; 5. शिव या संसार को सुख देने वाला; 6. शिवजी का पुत्र (षडानन) 7. तारागण या तारकासुर; 8. खेद; 9. चंद्रमा; 10. आसक्ति ।

अरुण प्रथम वह हुआ स्वच्छ फिर इसमें है कुछ तत्व ।
तमस् मार कर और रजोगुण आता है गुण सत्व ॥31॥

हो उठते अति ही आनन्दित कर्ण देख यह दृश्य ।
दुश्चिन्ताएँ दूर भागतीं होते क्लेश अदृश्य ॥32॥

दे गांकोदक[1] अर्घ्य अर्चना करते बारम्बार ।
मुझको दें वर देव आप हैं ऊर्जा 'के आगार ॥33॥

क्षमा करें करुणा दिखलाकर सुत के हठ को तात ।
टाल रहा हूँ परम विवश मैं आज आपकी बात ॥34॥

आज्ञा भंग जनक की जनता मानस में अति खेद ।
किन्तु विषय ही ऐसा आया है मेरा मतभेद ॥35॥

तपते हैं प्रभु आप ताकि यह बना रहे संसार ।
बस कर्त्तव्य आपको प्यारा अपरों को अधिकार ॥36॥

करते कहाँ आप भी अपना कभी नियम कुछ भंग ।
तो फिर तनय हेतु व्रत प्यारा हो या प्यारा अंग ॥37॥

नहीं किसी असुभृत[2] ने पाया जीवन यहाँ अशेष ।
देह नहीं यश ही रहता है भू पर नर का शेष ॥38॥

दें अनुमति मैं करूं ग्रहण जग में है जो कुछ सार ।
है विचित्र नरता[3] ढोती प्रमुदित असारता[4] भार ॥39॥

निकले धारा से बाहर कर रवि को पुनः प्रणाम ।
नहीं हटूंगा मैं सत्पथ से कुछ भी हो परिणाम ॥40॥

तभी कर्णगत हुई दीनता से थी भरी पुकार ।
है कोई कर सकता जो इस द्विज का कुछ उपकार ॥41॥

---

1. गंगाजल; 2. प्राणी; 3. मनुष्य जाति; 4. व्यर्थता ।

अंगराज के आज द्वार पर आया है यह विप्र।
कीर्ति बहुत है सुनी मनोरथ पूरा होता क्षिप्र[1] ॥42॥

अंगीकृत[2] हो नमन हमारा स्वागत है द्विजश्रेष्ठ।
आदरणीय आप सब विधि हैं वय में भी हैं ज्येष्ठ ॥43॥

देवें कुछ आदेश कि जन हो जिससे आज कृतार्थ।
करें आशु[3] अभिव्यक्त अभीप्सा[4] जिसका भी हो अर्थ ॥44॥

जो भी सेवा आप बताएँ प्रस्तुत है यह कर्ण।
धाम[5] धरा गजवाजि[6] माँगलें रजत[7] या कि फिर स्वर्ण ॥45॥

एक वस्तु याचक न पा सके कभी कर्ण के हाथ।
वही निराशा क्या आएगी हे विधि मेरे हाथ ॥46॥

नहीं शब्द का वचन न देती जिसके शब्द अमोघ[8]।
वही शब्द जिह्वा देगी क्या याचन होगा मोघ[9] ॥47॥

लौकिक नहीं वस्तु कुछ वाँछित नहीं परिग्रह[10] धर्म।
यदि दे पाओ तो मुझको दो अपने कुण्डल वर्म[11] ॥48॥

हँसा कर्ण दिव्यता रही है सदा द्विजों को प्रेय[12]।
लौकिकता में नहीं देखते वे कुछ भी तो श्रेय[13] ॥49॥

ऐसी चित्र[14] याचना पर है विस्मय मुझे महान।
किस विधि उपयोगी ये दोनों उत्तर करें प्रदान ॥50॥

ऐसी नहीं अवस्था द्विजवर करें आप अब युद्ध।
है किससे प्रतिशोध[15] चुकाना किस पापी पर क्रुद्ध ॥51॥

---

1. शीघ्र; 2. स्वीकृत; 3. शीघ्र; 4. इच्छा; 5. घर; 6. घोड़ा; 7. चाँदी; 8. जो खाली न जाय; 9. असफल; 10. संग्रह; 11. कवच; 12. प्रिय; 13. कल्याणकारी; 14. विचित्र; 15. बदला।

भक्ति साधना ही ब्राह्मण के वपु[1] के होते त्राण[2]।
धर्म मार्ग पर चलने वाला तुच्छ मानता प्राण ।।52।।

रहता है दुर्धर्ष[3] आत्मबल उसके पास महान।
और अमोघ अस्त्र होता है सदा द्विजों का ज्ञान ।।53।।

लड़कर जीवन भर भी जीतें वे तो रिपुषड्वर्ग[4]।
होकर विजित प्राप्त करते हैं स्वर्ग या कि अपवर्ग[5] ।।54।।

एक मात्र है मार्ग बताया अष्ट-अंगमय[6] योग।
काम क्रोध वारण[7] में होगा इनका क्या उपयोग ।।55।।

भौतिक अस्त्र रोकने में है सक्षम बस यह वर्म।
मात्र देह की रक्षा करना इसका है बस धर्म ।।56।।

नहीं गात्र[8] के ऊपर धारित हैं ये मेरे अंग।
कवच और कुण्डल दोनों ही जग में आए संग ।।57।।

देता फिर भी इन्हें काटकर करके बस आकृष्ट।
विचलित हों न देखकर मुझको नहीं देव कुछ कष्ट ।।58।।

वचन बद्धता जनित विवशता इसे न कहना आर्य।
याचक को अभीष्ट दे देना परम सुखद है कार्य ।।59।।

दोहा—आए भू पर अशनिभृत[9] निभृत[10] धार कर वेश।
निभृत पुण्यमय कोष ही अनिभृत[11] हुआ अशेष ।।60।।

दोहा—स्वागत बलरिपु[12] आपका हे बलबुद्धि निधान।
ज्ञात मुझे अब हो रहा सार्थक तव अभिधान[13] ।।61।।

---

1. शरीर; 2. बचाव; 3. जिसका अतिक्रमण न किया जा सके; 4. काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य थे छः शत्रु; 5. मोक्ष; 6. योग के आठ अंग है यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि; 7. दूर करना; 8. शरीर; 9. इन्द्र वज्रधारी; 10. छिपा हुआ; 11. प्रकट। 12. बलनामक राक्षस के शत्रु इन्द्र; 13. नाम।

धन्य आज मैं हुआ स्वयं आए समक्ष देवेश।
नहीं समझ में आता उनका धरना द्विज का वेश ॥62॥

प्रकृत[1] रूप में ही यदि भगवन् कर देते आदिष्ट।
नहीं याचना थी आवश्यक करता अर्पित इष्ट[2] ॥63॥

देख रहा हूँ आ पहुँचा रण भीषण बहुत समीप।
होमेंगे जिसमें निज जीवन कितने वीर महीप[3] ॥64॥

मैं भी उनमें एक रहूँ क्यों फिर भूपर अपवाद।
लौटाए सुरेन्द्र जीवनप्रिय फैलेगा परिवाद ॥65॥

आए जिस उद्देश्य से भू तल पर अगिरेश[4]।
इस सुनीति को देख कर विस्मित बहुत गिरेश[5] ॥66॥

मम अभेद्यता से उपजा इतना चिन्ता का भाव।
नहीं हुए आश्वस्त पार्थ पाकर जगरक्षक छाँव ॥67॥

जिसके रक्षक स्वयं महाप्रभु[6] होनी सकते टाल।
उसके हेतु लगी आवश्यक छद्म याचना ढाल ॥68॥

ऐसा विपुल और व्यापक है मम पुरूषार्थप्रभाव।
स्वयं नाकपति[7] आज पधारे लेकर याचक भाव ॥69॥

ऐसा क्षण आता जीवन में किसके बारम्बार।
मिले आपके दर्शन भूपर मुझको हर्ष अपार ॥70॥

दोहा—देखी नेत्र सहस्र से निज अपत्य[8] की भूति[9]।
किन्तु सहसकर जात से वैर भाव अनुभूति ॥71॥

---

1. वास्तविक; 2. वांछित; 3. राजा; 4. अगिर स्वर्ग के ईश इन्द्र;
5. बृहस्पति देवगुरु; 6. कृष्ण भगवान; 7. स्वर्ग के अधिपति इन्द्र;
8. सन्तान; 9. कल्याण।

कर में ही हैं धारते पवि[1] को सदा सुरेश।
उर में भी धारण करें जानी बात विशेष ॥72॥

रहा व्यर्थ ही देव सदा यह मेरे वपु का त्राण।
कहाँ बचा यह सका कर्ण के घायल होते प्राण ॥73॥

अपमानों के बाण विषैले लगे हृदय में नित्य।
नहीं आज तक जान सका क्या है मम कलुषित कृत्य ॥74॥

नहीं हुआ अवगम्य[2] रहा चिन्तित हे प्रभु राधेय।
दे दिव्यता पठाया भू पर क्या था विधि का ध्येय ॥75॥

आत्म रहा मेरा बहु संख्यक प्रश्न शरों से विद्ध।
देह मोह कैसा जब इसकी भंगुरता है सिद्ध ॥76॥

नहीं अलौकिकता अब कोई साथी बस पुरूषार्थ।
किन्तु न हो निश्चिन्त अभी भी मेरा प्रतिभट पार्थ ॥77॥

साधु साधु हे दानवीर जग तुमको पाकर धन्य।
इस त्रिलोक में भी न अभी है ऐसा दानी अन्य ॥78॥

याचक बनकर छद्मवेश में करने आया हानि।
लेकर ऐसा दान जलाती मुझे रहेगी ग्लानि ॥79॥

पाप बोध का फूट रहा है मन में ज्वाला-उत्स[3]।
हो इसका कुछ वेग न्यून वर माँगो कोई वत्स ॥80॥

कैसे माँगू देव मात्र अर्जन ही बनी प्रवृत्ति।
क्या कहते हैं आप ग्लानि से कैसे मिले निवृत्ति ॥81॥

मात्र जगत हित हेतु देव करते लीला विस्तार।
नहीं एक भी पदक्षेप उनका होता निस्सार ॥82॥

1. वज्र; 2. समझने योग्य; 3. स्रोत।

गहन परीक्षा लेते हैं यदि योगीजन की आप।
जिससे जाने स्वर्ग योग्य होने के सभी प्रमाप ॥83॥

यदि न सगर[1] अध्वर[2] हय हरते आप कहीं शतमन्यु[3]।
सुरसरि[4] कैसे आती भू पर हरने जग का मन्यु[5] ॥84॥

ध्यान मग्न धूर्जटि[6] से यदि करवाया मार विनाश।
दानवक्षय भवकामुकतालय हेतु भव्य सुप्रयास ॥85॥

यदि पर्जन्य[7] विलोडित करते नहीं आप ब्रजग्राम।
तो गोवर्धनधारी मिलता, कैसे, हरि को नाम ॥86॥

शायद मेरे अनावरण में ही जग की है भूति।
देख आपका उद्यम मुझको होती यह अनुभूति ॥87॥

सच कहता हूँ देवराज है तनिक न मुझको खेद।
अपनी इस प्रसन्नता का मैं बता रहा हूँ भेद ॥88॥

देकर इष्ट आपका मैंने साधा अपना स्वार्थ।
कीर्ति लगी थी आज दाव पर जिसके बिन सब व्यर्थ ॥89॥

श्रेय[8] प्रेय में किसे छाँटता नहीं प्रश्न यह गूढ़।
अक्षर[9] यश को छोड़ गात्र को चाहे वह तो मूढ़ ॥90॥

यश की रक्षा का ही उद्यम एक बचा है शेष।
सफल करूँ धरती पर आना वर दें यही विशेष ॥**91**॥

ढो पाऊँगा कैसे दुर्वह लज्जा का यह भार।
कर लो अंगीकार शक्ति यह करो कर्ण उपकार ॥92॥

ग्रहण करो मेरा आग्रह है वत्स अनूठी शक्ति।
क्षण में देती है प्राणों को यह शरीर से मुक्ति ॥93॥

---

1. राजा सगर; 2. यज्ञ; 3. इन्द्र; 4. गंगा; 5. दैन्य; 6. शिवजी; 7. वरसा; 8. कल्याण; 9. अविनाशी।

मानो है अमोघता हो धर आयो आयुध[1] रूप।
नर या दानव हेतु सदा यह अस्त्र मृत्यु का रूप ॥94॥

नहीं सहन कर सकता इसका कोई क्रूर प्रहार।
पल में इसका मारा बनता अन्तक[2] का आहार ॥95॥

किन्तु करोगे आयुध का प्रक्षेप एक ही बार।
उसके बाद नहीं होगा इस पर तेरा अधिकार ॥96॥

दोहा—सानुक्रोश[3] प्रभु आप हैं सदा रहेंगे मान्य।
इस जन को अपवाद से बना दिया सामान्य ॥97॥

देकर शक्ति गए लज्जित हो इन्द्र पुनः सुरधाम।
हर्षित कर्ण चले घर को धर नूतन वर्धित धाम[4] ॥98॥

दोहा—गये अमरपति मनुज से लेकर उसका त्राण।
वर स्वरूप देकर चले जो हरता है प्राण ॥99॥

---

1. अस्त्र; 2. यमराज; 3. दयायुक्त; 4. तेज।